प्रश्न — भ्रमरगीत रचना में सूरदास का क्या उद्देश्य है? इसमें आये हुए सगुण तथा निर्गुण सम्बन्धी आदर्शों का विवेचन कीजिये?

अथवा — भ्रमरगीत में निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन।

उत्तर — किसी रचना के प्रणयन में प्रणेता का कोई न कोई उद्देश्य होता है। उद्देश्य प्राप्ति के हेतु ही वह अपनी अन्तःवृत्तियों को समेटकर ग्रंथ रचना में संलग्न होता है अपने संकल्प की सिद्धि के अनुसार आत्म तुष्टि लाभ करता है। भ्रमरगीत के आद्योपांत अध्ययन से स्पष्ट लक्षित होता है कि इसके प्रणयन में सूरदास का मुख्य उद्देश्य निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन तथा ज्ञान के अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन रहा है।

दूसरी बात यह है कि साम्प्रदायिकता की छाप लगी है। जैसा कि हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी कहा है — "वे अष्टछाप में थे। इन्होंने अनन्य उपासना के अनुसार केवल हरि को छोड़कर और देवताओं की स्तुति नहीं की है।"

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्यों में से थे। वल्लभाचार्य की उपासना माधुर्य भाव की उपासना थी। इनके उपास्य प्रेममूर्ति कृष्ण थे। सूरदास या अष्टछाप के अन्य कवियों में से सब का काम इसी प्रेम मूर्ति कृष्ण का कीर्तन एवं गुणगान करना था। इसी समय निर्गुणिया संतों द्वारा ज्ञान योग का भी प्रचार हो रहा था जो सगुण भक्ति धारा के विरुद्ध था जो ~~सगुण भक्ति धारा के~~। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि सूरदास ने गोपियों से उद्धव जिन्हें अपने ज्ञान का अभिमान था की बातों बातों में अंतिम उत्तर के रूप में कहलाया है।

"बार-बार मैं वचन निवारौ।
भक्ति विरोधी ज्ञान तिहारौ।।"

अतः स्पष्ट है कि सूरदास इस भक्ति विरोधी ज्ञान के विरोधी है और यह संभव है उन्होंने भ्रमरगीत की रचना अपने साम्प्रदायिक सिद्धांत के महत्व प्रतिपादन के निमित्त की हो।

आचार्यों का विचार

आचार्य शुक्ल का विचार है कि निर्गुणोपासना की नीरसता और अग्राह्यता दिखाकर उपासना का हृदयग्राही स्वरूप सामने लाना ही सूरदास का मुख्य उद्देश्य था। उन्होंने लिखा है कि "रस विहीन उपदेश से लोक व्यवहार कैसे चल सकता है।" विरह रस के मंत्र कहिये क्यों चले संसार। रस विहीन उपदेश किस प्रकार असर नहीं करते, यह दिखाने को 'भ्रमरगीत' की रचना हुई है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भ्रमरगीत की रचना में सूरदास का प्रमुख उद्देश्य निर्गुण का खण्डन सगुण का मण्डन तथा ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की ~~अपेक्षा~~ श्रेष्ठता का प्रतिपादन है।

इस खंडन मंडन की प्रवृत्ति के हेतुओं का संधान करते हुए आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कहा है कि "यह तत्कालीन सुदृढ़ जनक प्रवृत्ति की फीकी मिलता उच्छेद करने के लिए सूर ने सागर की ये उत्ताल तरंगे लहराई"। ज्ञान योगों की साधना वस्तुतः अधिक कठिन है। सूरदास ने ज्ञान योग के प्रतिपक्ष में प्रेम योग का महत्व प्रतिपादित करते हुए यह प्रतिपादित किया कि भक्ति की भी बड़ी परमावश्यक है

जो ज्ञान की ——

Scanned with CamScanner

"अहो अज्ञान! ज्ञान उपदेसन ज्ञाता रूप हमही।
निसि दिन ध्यान सूर प्रभु को अलि! देखत जित तितही॥"

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ज्ञान योग की कठिनता की और गोपियों के संकेत देते हुए लिखा है कि — "ज्ञान की कोरी वचनावली और योग की साधनावली का यदि साधारण लोगों में विशेष प्रचार हो जाय तो अत्यन्त व्यथा फैलनी लगती है। निर्गुण पथ ईश्वर की सर्वव्यापकता, भेदभाव की शून्यता एवं जगत की एकता आदि को लेकर आगे बढ़ा जिस पर चलकर अपढ़ जनता ज्ञान की अनगढ़ बातों और योग के टेढ़े अभ्यासों में ही सब कुछ मान बैठी तथा दम्भ अहंकार आदि दुर्वृत्तियों से उलझने लगी।

भ्रमरगीत में सूरदास ने निर्गुण और सगुण का खण्डन मण्डन इन दोनों आदर्शों को ध्यान में रखकर किया है। सूर ने योग मार्ग या ज्ञान को संकीर्ण कठिन और नीरस कहा है तथा भक्ति मार्ग को विशाल सरल और सरस कहा है। ज्ञान या योग का अभ्यासी विश्व की विभूति से अपनी वृत्ति समेट कर अनेक हो जाता है। फलस्वरूप ग्राह्य रूप एवं उलझन की सृष्टि होती है। परन्तु भक्त का बहिर्मुख रहता है। वह ज्ञान की विभूति, मद, भक्ति, ओतप्रोत रूपों में अपनी वृत्ति रमाये रहता है। उसके लिए सब कुछ सुलझा हुआ है इसलिए वह दुराव छिपाव से दूर रहता है, इस प्रकार भक्ति का राजमार्ग चौड़ा, निष्कंटक और सीधा है, इसमें गोपन रहस्य का अभाव नहीं है गोपियाँ कहती हैं —

"काहे को रोकत मारग सूधो?
सुनहु मधुप! निर्गुन कंटक तें राजपथ क्यों रूंधो?"

विश्व की विभूति को

मन को रमाने का जैसा अवसर भक्ति भावना में है वैसा ज्ञान साधना में नहीं। ज्ञानयोग का मार्ग अन्तर्व्यापी नहीं, बहिर्व्यापी सत्ता से जुड़ता है—

" रुचि नहीं कृपाल सब पार कहत जिक समान
निकसि क्यों न गोपाल की घात, दु:खिन के दु:खदान।

चूंकि निर्गुणोपासना निराधार होती है मन को चक्कर में डालती है— निरालम्ब मन चकृत धावै"। इसलिए इसको नीरस भी कहा गया है—

"आलि! कहा जोग में नीको?
तजि रसरीति नंद नंदन की सिखवत निर्गुन फीको
सुनत कहत गुरु कौन कहाँ अलि, कौन सुनै मन धीकै॥"

इस प्रकार स्पष्ट है कि सूरदास ने निर्गुण के आदर्शों को "निरालम्ब" नीरस तथा निर्मूल कहकर उसका प्रतिवाद किया है। गोपियाँ कहती है—

" यह निर्गुण निर्मूल गठरी, ज्यों बिन कहु खरी"

सार में जिस बात को कहा मार्मिक ढंग से कहा है उसे ही गोस्वामी तुलसीदास ने दार्शनिक विवेचना के ढंग पर स्वानुभूति और वाक्य ज्ञान का भेद बताकर कहा है—

{'वाक्य ज्ञान अत्यंत निपुन भव पार न पावै कोई
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई

कोई कुछ ही कहे कुछ कहे

ज्ञान या योग साधना के मानसिक पक्ष अर्थात् बुद्धि तत्व की प्रधानता है और हृदय पक्ष गौण है। किन्तु प्रकृति स्वभाव केवल कोरी बुद्धि की क्रिया से नहीं होता यह बात शंकराचार्य जैसे प्रखर बुद्धि वाले व्यक्ति को भी माननी पड़ी थी। परमार्थिक सत्ता की बोध की संभावना उन्होंने बहुत कुछ स्वानुभूति द्वारा कही है केवल शब्द बोध या तर्क द्वारा नहीं।

Scanned with CamScanner

वर्तमान समय का बहुत आगे बढ़ा हुआ दार्शनिक बर्गसाँ (Bergson) बुद्धि क्रिया को विनाशकारी मानता है और आत्ममर्शी बताकर स्वानुभूति की ओर संकेत कर रहा है। प्रसिद्ध कारपेन्टर ने भी अपनी प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक "Civilisation its Causes and Cure" वर्तमान समय की इस वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विरोध किया है जिसमें बुद्धि क्रिया ही सब कुछ समझी जाती है/ मानी जाती है/ मनुष्य के हृदय पक्ष तथा स्वानुभूति पक्ष का बिलकुल तिरस्कार कर दिया है। उसने शब्द-बोध की प्रणाली को 'अज्ञान प्रणाली' कहा है। यही बात हमारे तुलसी आदि भक्तों का स्वर है। तुलसीदास ने स्वीकार किया है कि ना अज्ञान ही के द्वारा शब्द बोध के ही सहारे तो ज्ञान की बातें कही जाती हैं— "ज्ञान कहै अज्ञान बिन सो गुरु तुलसीदास"। इस प्रकार वैज्ञानिक द्वार से भी सूरदास का उद्देश्य भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन है जिसमें हृदय पक्ष की प्रधानता है।

अब साहित्य को ध्यान में रखकर विचार किया जाये तो कि साहित्यिक द्वार से भी भ्रमरगीत का उद्देश्य अत्यन्त ऊँचा है। निर्गुण वाला जिसमें ज्ञान योग साधना का ही महत्त्व है। लेकिन भारतीय साहित्य निवृत्तिमुखी कभी नहीं रहा, भक्ति को रस मानकर भी भक्ति प्रकृति मार्गी है। प्रवृत्ति लक्षणा है. यह बहुत पहले घोषित कर दिया था कि "प्रवृत्ति लक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः।"

अतः सम्भव है कि सूरदास ने

सूरदास ने इस प्रवृत्ति मार्गी साहित्य की परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए भगवान के स्वरूप को छोड़कर किसी लीलाओं की प्रधानता के द्वारा प्रवृत्ति मार्ग को ही प्रश्रय किया गया है। यह रचना का प्रयोग किया है, सूर के लीला पुरुषोत्तम के सम्मुख साहित्य की वाणी नतमस्तक और आज तल्लीन है।

The End